Volume: 5 Issue: 8 Pages: 44-48

आंबेडकर और दलित आंदोलन

*[1] डॉ. बीरेंद्रमणि त्रिपाठी

*[1] सह आचार्य, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (QJIF): 8.4
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 15/July/2026
Accepted: 10/Aug/2026

***Corresponding Author**
डॉ. बीरेंद्रमणि त्रिपाठी
सह आचार्य, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
आधुनिक भारतीय इतिहास में डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता और मानव गरिमा के लिए आजीवन संघर्ष किया। विशेष रूप से दलितों और अन्य वंचित समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए उनका योगदान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक और संवैधानिक—सभी क्षेत्रों में व्यापक था। उन्होंने जाति-आधारित भेदभाव और अस्पृश्यता को भारतीय समाज की गंभीर समस्याओं के रूप में रेखांकित किया तथा इनके उन्मूलन के लिए संगठित आंदोलन चलाया। डॉ. आंबेडकर केवल दलित नेता ही नहीं थे, बल्कि अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक और चिंतक भी थे। स्वतंत्र भारत के संविधान-निर्माण में प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्होंने समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और वंचित समुदायों के अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा को मजबूत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। शिक्षा को वे सामाजिक मुक्ति का प्रमुख साधन मानते थे और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को वंचित समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक समझते थे।

मुख्य शब्द: डॉ. बी. आर. आंबेडकर, दलित आंदोलन, सामाजिक न्याय, जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता, समानता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, संविधान, सामाजिक सुधार।

प्रस्तावना:

डॉ. आंबेडकर का प्रारंभिक जीवन और सामाजिक चेतना

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्य प्रदेश स्थित महू छावनी में हुआ था। उनके पिता रामजी मालोजी सकपाल ब्रिटिश भारतीय सेना में सूबेदार थे और माता का नाम भीमाबाई था। वे अपने माता-पिता की चौदहवीं संतान थे। उनका जन्म महार समुदाय में हुआ था, जिसे उस समय अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों में शामिल किया जाता था। बाल्यकाल से ही आंबेडकर को जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और अपमान का सामना करना पड़ा। विद्यालय में भी उन्हें अन्य विद्यार्थियों से अलग रखा जाता था और सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग में अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता था। इन अनुभवों ने उनके व्यक्तित्व और सामाजिक चिंतन को गहराई से प्रभावित किया। उन्होंने अनुभव किया कि जातिगत भेदभाव केवल व्यक्तिगत व्यवहार की समस्या नहीं, बल्कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था की संरचनात्मक समस्या है। उनकी मेधा, अनुशासन और अध्ययनशीलता ने उनके शिक्षकों को प्रभावित किया। सतारा के एक उदारमना ब्राह्मण शिक्षक द्वारा उनके नाम के साथ 'आंबेडकर' उपनाम का प्रयोग किया गया, जिसे उन्होंने आगे चलकर अपना स्थायी उपनाम बना लिया। 1908 में उनका विवाह रमाबाई से हुआ। रमाबाई का निधन 1935 में हुआ। इसके बाद 1948 में आंबेडकर ने डॉ. शारदा कबीर से विवाह किया, जिन्होंने बाद में सविता आंबेडकर के नाम से पहचान प्राप्त की।

उच्च शिक्षा और बौद्धिक विकास

आंबेडकर ने अत्यंत कठिन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद उच्च शिक्षा प्राप्त की। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की छात्रवृत्ति के सहारे वे 1913 में उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गए और कोलंबिया विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। वहाँ उन्होंने अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र और दर्शन सहित विभिन्न विषयों का गंभीर अध्ययन किया। आधुनिक शिक्षा ने उन्हें सामाजिक समस्याओं को वैज्ञानिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण से समझने की व्यापक क्षमता प्रदान की। 1916 में वे उच्च शिक्षा के लिए लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिकल साइंस गए। छात्रवृत्ति समाप्त हो जाने के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर भारत लौटना पड़ा। बाद में उन्हें पुनः लंदन जाकर अपनी अधूरी शिक्षा पूरी करने का अवसर मिला। जनवरी 1923 में उन्हें डी.एससी. की उपाधि प्राप्त हुई तथा उन्होंने ग्रेज़ इन से विधि की शिक्षा पूरी कर बैरिस्टर की योग्यता प्राप्त की।

अर्थशास्त्र, राजनीति, विधि और सामाजिक विज्ञानों में प्राप्त उनकी शिक्षा ने उनके सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन की मजबूत

आधारभूमि तैयार की। वे आधुनिक लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को भारतीय सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में समझने और लागू करने के पक्षधर बने।

बड़ौदा का अनुभव और सामाजिक चेतना

उच्च शिक्षा पूरी करने के बाद आंबेडकर भारत लौटे और पूर्व निर्धारित समझौते के अनुसार बड़ौदा राज्य की सेवा करने लगे। उन्हें सैन्य सचिव के पद पर नियुक्त किया गया। किंतु उनकी उच्च शिक्षा और योग्यता भी उन्हें जातिगत भेदभाव से नहीं बचा सकी। कार्यालय और सार्वजनिक जीवन में उन्हें अस्पृश्यता तथा सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा। रहने के लिए उपयुक्त स्थान प्राप्त करना भी उनके लिए कठिन था।

इन अपमानजनक परिस्थितियों के कारण उन्हें बड़ौदा की नौकरी छोड़कर बंबई जाना पड़ा। बड़ौदा के अनुभव ने उनके सामाजिक चिंतन को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। उन्होंने महसूस किया कि केवल शिक्षा, व्यक्तिगत योग्यता या आर्थिक उन्नति से जातिगत भेदभाव समाप्त नहीं हो सकता। इसके लिए सामाजिक संरचना में मूलभूत परिवर्तन आवश्यक है। यही अनुभव आगे चलकर उनके जाति-विरोधी आंदोलन, सामाजिक न्याय की विचारधारा और दलितों के राजनीतिक अधिकारों के संघर्ष का महत्त्वपूर्ण आधार बना।

अध्यापन और शोधकार्य

भारत लौटने के बाद आंबेडकर ने अध्यापन और शोध के क्षेत्र में भी कार्य किया। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था और कृषि संबंधी समस्याओं का अध्ययन किया तथा 'भारत में छोटी जोत और उसका हल' विषय पर शोधकार्य किया। नवंबर 1918 में वे बंबई के सिडेनहैम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। अध्यापन के साथ-साथ वे सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों पर भी सक्रिय रूप से विचार करते रहे। 1920 में उन्हें पुनः विदेश जाकर अपनी अधूरी शिक्षा पूरी करने का अवसर मिला। इसके लिए महाराजा कोल्हापुर से मिली आर्थिक सहायता महत्त्वपूर्ण रही। लंदन लौटकर उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा और विधि संबंधी प्रशिक्षण पूरा किया। 1923 में भारत लौटने के बाद उन्होंने वकालत, लेखन और सामाजिक कार्य को अपने सार्वजनिक जीवन का आधार बनाया।

सामाजिक चेतना का विकास

आंबेडकर के प्रारंभिक जीवन के अनुभवों ने उन्हें यह समझने में सहायता की कि अस्पृश्यता केवल सामाजिक व्यवहार की समस्या नहीं थी, बल्कि वह जाति-व्यवस्था से जुड़ी व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्या थी। इसलिए उन्होंने दलितों की मुक्ति के लिए शिक्षा, संगठन और राजनीतिक अधिकारों को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना। उनके लिए सामाजिक सम्मान और मानवीय गरिमा केवल व्यक्तिगत उपलब्धि का विषय नहीं था, बल्कि समान नागरिक अधिकारों से जुड़ा प्रश्न था। बाल्यकाल में झेले गए भेदभाव, उच्च शिक्षा से प्राप्त आधुनिक दृष्टिकोण और बड़ौदा में अनुभव किए गए सामाजिक अपमान ने उनके चिंतन को नई दिशा दी। आगे चलकर यही अनुभव उनके व्यापक दलित आंदोलन और सामाजिक न्याय के संघर्ष की वैचारिक आधारभूमि बने।

स्वतंत्रता-पूर्व दलित आंदोलन

भारत में दलित चेतना की पृष्ठभूमि डॉ. आंबेडकर से पहले ही तैयार हो चुकी थी। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के संतों, विशेषकर कबीर और रविदास, ने जातिगत ऊँच-नीच तथा धार्मिक रूढ़ियों की आलोचना की और भक्ति तथा मानव समानता पर बल दिया। यद्यपि इन आंदोलनों का स्वरूप आधुनिक राजनीतिक दलित आंदोलन से अलग था, फिर भी उन्होंने सामाजिक समानता की चेतना विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्नीसवीं शताब्दी में ज्योतिराव फुले ने जाति-आधारित सामाजिक असमानता के विरुद्ध संगठित संघर्ष किया। उन्होंने 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। फुले ने शूद्रों और अतिशूद्रों की शिक्षा तथा सामाजिक अधिकारों के लिए कार्य किया। उनकी सहयोगी सावित्रीबाई फुले ने स्त्री-शिक्षा और वंचित समुदायों के शैक्षिक उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसी अवधि में आर्य समाज सहित विभिन्न सामाजिक सुधार आंदोलनों ने अस्पृश्यता और सामाजिक रूढ़ियों के प्रश्न को उठाया। दक्षिण भारत में गैर-ब्राह्मण आंदोलनों ने सामाजिक और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की माँग को मजबूत किया। इस व्यापक सामाजिक पृष्ठभूमि में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में दलित आंदोलन को नई राजनीतिक दिशा प्राप्त हुई।

आंबेडकर और दलित आंदोलन का संगठन

भारत लौटने के बाद डॉ. आंबेडकर ने बंबई में वकालत के साथ-साथ अस्पृश्यता और दलितों पर होने वाले सामाजिक अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठानी शुरू की। महाराष्ट्र में छत्रपति शाहूजी महाराज के सामाजिक सुधार प्रयासों से दलितों और वंचित समुदायों में सामाजिक-राजनीतिक चेतना विकसित हो रही थी। ऐसे वातावरण में आंबेडकर के नेतृत्व को व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ।

अपने आंदोलन को संगठित और व्यापक बनाने के लिए उन्होंने पत्रकारिता को प्रभावी माध्यम बनाया। 'मूकनायक' और बाद में 'बहिष्कृत भारत' जैसे पत्रों के माध्यम से उन्होंने दलितों की समस्याओं, जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाया। जुलाई 1924 में उन्होंने बंबई में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की। इसका उद्देश्य दलित समुदाय में शिक्षा का प्रसार करना, सामाजिक चेतना उत्पन्न करना तथा उनके सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना था। आंबेडकर का मानना था कि दलितों की मुक्ति केवल सामाजिक सहानुभूति से संभव नहीं है। इसके लिए शिक्षा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, आर्थिक अवसर और कानूनी अधिकार आवश्यक हैं।

महाड़ सत्याग्रह और मंदिर प्रवेश आंदोलन

डॉ. आंबेडकर के आंदोलन का महत्त्वपूर्ण चरण महाड़ सत्याग्रह (1927) था। महाराष्ट्र के महाड़ स्थित चवदार तालाब का पानी सार्वजनिक उपयोग के लिए उपलब्ध था, लेकिन दलितों को उसका उपयोग करने से सामाजिक रूप से रोका जाता था। आंबेडकर ने दलितों के सार्वजनिक जलस्रोतों पर समान अधिकार के लिए आंदोलन का नेतृत्व किया। महाड़ सत्याग्रह का उद्देश्य केवल पानी प्राप्त करना नहीं था, बल्कि सार्वजनिक संसाधनों पर समान नागरिक अधिकार स्थापित करना था। 25 दिसंबर 1927 को महाड़ में आयोजित सम्मेलन के दौरान मनुस्मृति का सार्वजनिक दहन किया गया। यह घटना जाति-आधारित सामाजिक व्यवस्था के वैचारिक विरोध के प्रतीक के रूप में प्रसिद्ध हुई। इसके बाद आंबेडकर ने धार्मिक स्थलों में समान प्रवेश के अधिकार के लिए भी आंदोलन किया। 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर सत्याग्रह के माध्यम से उन्होंने दलितों के मंदिर-प्रवेश के प्रश्न को प्रमुखता से उठाया। इन आंदोलनों का उद्देश्य किसी एक तालाब या मंदिर तक पहुँच प्राप्त करना मात्र नहीं था, बल्कि सामाजिक समानता, आत्मसम्मान और मानव गरिमा के सिद्धांत को स्थापित करना था।

पृथक निर्वाचन की माँग और पूना समझौता

दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न आंबेडकर के राजनीतिक चिंतन का प्रमुख हिस्सा था। उनका मानना था कि सामाजिक रूप से वंचित समुदायों को राजनीतिक संस्थाओं में स्वतंत्र और प्रभावी प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। उनका तर्क था कि सामान्य निर्वाचन

व्यवस्था में दलितों के प्रतिनिधि प्रभावशाली सामाजिक समूहों पर निर्भर हो सकते हैं और अपने समुदाय के हितों की स्वतंत्र रूप से रक्षा नहीं कर पाएँगे।

गोलमेज सम्मेलनों में आंबेडकर ने दलितों के राजनीतिक अधिकारों और सत्ता में भागीदारी का प्रश्न प्रमुखता से उठाया। 1931 के दूसरे गोलमेज सम्मेलन में पृथक निर्वाचन के प्रश्न पर उनका महात्मा गांधी से गंभीर मतभेद हुआ। गांधीजी हिंदू समाज के स्थायी राजनीतिक विभाजन की आशंका के कारण पृथक निर्वाचन का विरोध कर रहे थे, जबकि आंबेडकर इसे दलितों के राजनीतिक संरक्षण के लिए आवश्यक मानते थे।

1932 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड द्वारा घोषित सांप्रदायिक निर्णय में दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई। गांधीजी ने इसका विरोध किया और यरवदा जेल में आमरण अनशन प्रारंभ किया। अंततः गांधी और आंबेडकर के बीच समझौता हुआ, जिसे पूना समझौता (1932) कहा जाता है। इसके अंतर्गत पृथक निर्वाचन के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था स्वीकार की गई, लेकिन विधानमंडलों में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या बढ़ाई गई। इस समझौते ने भारत में दलित राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न को एक नया स्वरूप दिया।

आंबेडकर के राजनीतिक संगठन

डॉ. आंबेडकर ने दलित समुदाय को संगठित करने के लिए विभिन्न संस्थाओं और राजनीतिक संगठनों का निर्माण किया। उनका उद्देश्य केवल दलितों के अधिकारों की रक्षा करना नहीं था, बल्कि श्रमिकों, किसानों और अन्य वंचित वर्गों के सामाजिक-आर्थिक हितों को भी राजनीतिक अभिव्यक्ति देना था।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी

1936 में आंबेडकर ने इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी (स्वतंत्र मजदूर पार्टी) की स्थापना की। इसका उद्देश्य दलितों के साथ-साथ श्रमिकों, किसानों और अन्य वंचित वर्गों के हितों को राजनीतिक मंच प्रदान करना था। 1937 के प्रांतीय चुनावों में इस पार्टी ने बंबई प्रांत में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इससे आंबेडकर की राजनीति केवल दलित प्रश्न तक सीमित न रहकर व्यापक श्रमिक और सामाजिक-आर्थिक प्रश्नों से भी जुड़ी दिखाई दी।

ऑल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन

1942 में आंबेडकर ने ऑल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन (अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ) की स्थापना की। इसका उद्देश्य अनुसूचित जातियों को स्वतंत्र राजनीतिक मंच प्रदान करना तथा उनके सामाजिक और राजनीतिक हितों की रक्षा करना था। 1946 के चुनावों में इस संगठन को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इसके बावजूद आंबेडकर ने शिक्षा, सामाजिक सशक्तीकरण और राजनीतिक चेतना को अपने आंदोलन का महत्त्वपूर्ण आधार बनाए रखा। 1946 में उन्होंने पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की, जिसके माध्यम से उच्च शिक्षा के अवसरों के विस्तार का प्रयास किया गया।

आंबेडकर और गांधी

महात्मा गांधी और डॉ. आंबेडकर दोनों अस्पृश्यता के विरोधी थे, लेकिन उनके दृष्टिकोण और राजनीतिक रणनीतियों में महत्त्वपूर्ण अंतर था। गांधी अस्पृश्यता को हिंदू समाज की गंभीर बुराई मानते थे और हिंदू समाज के भीतर सुधार के माध्यम से इसे समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण को अपने सामाजिक कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाया तथा हरिजन सेवक संघ और हरिजन पत्र के माध्यम से इसके विरुद्ध जनमत तैयार करने का प्रयास किया। आंबेडकर का दृष्टिकोण अधिक संरचनात्मक और अधिकार-आधारित था। वे केवल सामाजिक सद्भाव या नैतिक सुधार से संतुष्ट नहीं थे। उनका मानना था कि दलितों को राजनीतिक शक्ति, कानूनी सुरक्षा, शिक्षा और आर्थिक अवसर प्राप्त होने चाहिए। जाति-व्यवस्था के प्रश्न पर दोनों के विचारों में स्पष्ट अंतर था। आंबेडकर जाति-व्यवस्था के मूल ढाँचे को समाप्त करने पर बल देते थे, जबकि गांधी सामाजिक सुधार और अस्पृश्यता-निवारण के माध्यम से परिवर्तन की दिशा में कार्य करते थे। पृथक निर्वाचन और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर दोनों के मतभेद विशेष रूप से तीखे रहे।

कांग्रेस से संबंध और स्वतंत्रता का प्रश्न

डॉ. आंबेडकर और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बीच दलितों के राजनीतिक अधिकारों तथा स्वतंत्र भारत में उनकी स्थिति को लेकर गंभीर मतभेद थे। कांग्रेस का प्रमुख लक्ष्य राजनीतिक स्वतंत्रता था, जबकि आंबेडकर राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सामाजिक समानता और दलितों की राजनीतिक सुरक्षा को भी अनिवार्य मानते थे।

आंबेडकर को आशंका थी कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद भी यदि सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बनी रहीं, तो दलित समुदाय वास्तविक स्वतंत्रता से वंचित रह सकता है। इसलिए उन्होंने दलितों के लिए संवैधानिक और राजनीतिक संरक्षण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। यद्यपि कांग्रेस और गांधीजी के साथ उनके अनेक मतभेद थे, फिर भी उनकी विद्वत्ता, विधिक विशेषज्ञता और संवैधानिक दृष्टि के कारण स्वतंत्र भारत में उन्हें महत्त्वपूर्ण भूमिका मिली। वे स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री बने और संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में संविधान-निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाई।

संविधान निर्माण में आंबेडकर की भूमिका

संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक समानता, विधिक संरक्षण और नागरिक अधिकारों को संवैधानिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण आधार बनाने में योगदान दिया। संविधान-निर्माण में अनेक सदस्यों, समितियों और विशेषज्ञों का योगदान था। इसलिए आंबेडकर को संविधान का अकेला निर्माता कहना उचित नहीं होगा। फिर भी प्रारूप समिति के अध्यक्ष और प्रमुख संवैधानिक विचारक के रूप में उनकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी।

भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय को मूल संवैधानिक मूल्यों के रूप में स्थापित किया। अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण की गारंटी देता है। अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान आदि के आधार पर भेदभाव का निषेध करता है। अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार में अवसर की समानता से संबंधित है।

अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का उन्मूलन करता है और उसके किसी भी रूप में व्यवहार को निषिद्ध घोषित करता है। इसके अतिरिक्त, संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा उनके सामाजिक और शैक्षिक हितों की सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रावधान किए गए।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुच्छेद 15(4) मूल संविधान का हिस्सा नहीं था; इसे 1951 के प्रथम संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया। इसी प्रकार अनुच्छेद 16(4बी) बाद के संवैधानिक संशोधन द्वारा जोड़ा गया। इसलिए इन प्रावधानों को सीधे संविधान-निर्माण के समय आंबेडकर द्वारा शामिल किए गए प्रावधानों के रूप में प्रस्तुत करना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं होगा।

आंबेडकर और सामाजिक-आर्थिक न्याय

आंबेडकर केवल राजनीतिक अधिकारों तक सीमित नहीं थे। वे सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र को राजनीतिक लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक मानते थे। उनका विचार था कि यदि

समाज में अत्यधिक आर्थिक और सामाजिक असमानता बनी रहेगी, तो केवल राजनीतिक समानता लोकतंत्र को स्थायी आधार प्रदान नहीं कर सकती।

उन्होंने श्रमिकों, महिलाओं और अन्य वंचित समुदायों के अधिकारों की वकालत की। श्रम नीति, काम के घंटे, श्रमिक कल्याण, मातृत्व लाभ और सामाजिक सुरक्षा जैसे प्रश्नों पर भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए।

महिलाओं के अधिकारों के संबंध में उनका दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रगतिशील था। हिंदू कोड बिल के माध्यम से वे हिंदू महिलाओं को संपत्ति, विवाह और उत्तराधिकार से संबंधित अधिक समान अधिकार दिलाना चाहते थे। विधेयक को अपेक्षित राजनीतिक समर्थन न मिलने के कारण उन्होंने 1951 में केंद्रीय मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया।

आंबेडकर और समाजवाद

डॉ. आंबेडकर आर्थिक समानता के समर्थक थे, लेकिन उनका दृष्टिकोण मार्क्सवादी साम्यवाद से अलग था। वे जाति को भारतीय समाज की विशिष्ट और अत्यंत महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक समस्या मानते थे।

उनकी दृष्टि में केवल आर्थिक वर्ग-संघर्ष के माध्यम से भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन संभव नहीं था, क्योंकि जाति सामाजिक संबंधों, श्रम-विभाजन और सामाजिक प्रतिष्ठा को गहराई से प्रभावित करती थी। वे लोकतांत्रिक व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक न्याय स्थापित करने के पक्षधर थे।

आंबेडकर राजनीतिक लोकतंत्र के साथ सामाजिक लोकतंत्र को भी आवश्यक मानते थे। उनके लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व न्यायपूर्ण समाज की आधारभूत शर्तें थीं।

धर्मांतरण और बौद्ध आंदोलन

डॉ. आंबेडकर लंबे समय से जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता की आलोचना करते रहे थे। उनका मानना था कि सामाजिक सम्मान और समानता के बिना दलित समुदाय का वास्तविक उत्थान संभव नहीं है। धीरे-धीरे उनका विश्वास इस बात में कम होता गया कि हिंदू सामाजिक व्यवस्था के भीतर रहकर जाति-व्यवस्था का पूर्ण उन्मूलन संभव होगा।

1935 में उन्होंने घोषणा की कि यद्यपि उनका जन्म हिंदू समाज में हुआ है, लेकिन वे हिंदू के रूप में मृत्यु स्वीकार नहीं करेंगे। इसके बाद उन्होंने विभिन्न धर्मों का अध्ययन किया और अंततः बौद्ध धर्म को अपनाने का निर्णय लिया।

14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में डॉ. आंबेडकर ने अपने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण किया। इस घटना ने भारतीय दलित आंदोलन और बौद्ध नवजागरण को नई वैचारिक एवं सांस्कृतिक दिशा प्रदान की। उन्होंने बौद्ध धर्म को सामाजिक समानता, नैतिकता और मानवतावाद के संदर्भ में देखा। 6 दिसंबर 1956 को डॉ. आंबेडकर का निधन हुआ। उनके सामाजिक, राजनीतिक, विधिक और बौद्धिक योगदान के सम्मान में भारत सरकार ने 1990 में उन्हें मरणोपरांत 'भारत रत्न' से सम्मानित किया।

अन्य दलित नेता और संगठन

डॉ. आंबेडकर के समानांतर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक दलित और सामाजिक सुधार आंदोलनों का विकास हुआ। बिहार में जगजीवन राम ने दलित समुदाय को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज लीग के माध्यम से दलितों के सामाजिक और राजनीतिक हितों को आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

इसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ी और वंचित जातियों ने भी सामाजिक-राजनीतिक संगठन बनाए। बिहार में कुशवाहा, यादव और कुर्मी समुदायों ने 1933 में त्रिवेणी संघ का गठन किया। इन संगठनों ने सामाजिक प्रतिनिधित्व, राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक वर्चस्व की मौजूदा संरचनाओं को चुनौती देने का प्रयास किया।

गांधी और अस्पृश्यता का प्रश्न

महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता को भारतीय समाज की गंभीर बुराई माना और इसके उन्मूलन को राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक कार्यक्रम से जोड़ा। 1920 के असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम में भी अस्पृश्यता-निवारण को महत्त्व दिया गया। गांधीजी ने छुआछूत की निंदा करते हुए हिंदू समाज के भीतर सुधार का प्रयास किया।

यद्यपि वर्ण और जाति के प्रश्न पर गांधीजी के विचार समय के साथ परिवर्तित होते रहे और इस विषय पर आंबेडकर के साथ उनके गंभीर मतभेद बने रहे। आंबेडकर जाति-व्यवस्था के मूल ढाँचे को समाप्त करने पर बल देते थे, जबकि गांधीजी सामाजिक सुधार और अस्पृश्यता-निवारण के माध्यम से परिवर्तन की दिशा में कार्य करते थे। यही वैचारिक अंतर दोनों के बीच विवाद का एक प्रमुख कारण बना।

पेरियार और गैर-ब्राह्मण आंदोलन

ई. वी. रामासामी 'पेरियार' दक्षिण भारत के प्रमुख सामाजिक सुधारकों और गैर-ब्राह्मण आंदोलन के नेताओं में थे। वे प्रारंभ में कांग्रेस से जुड़े थे, किंतु जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता के प्रश्न पर मतभेद होने के बाद उन्होंने 1925 में आत्मसम्मान आंदोलन प्रारंभ किया।

तमिलनाडु में गैर-ब्राह्मण राजनीतिक चेतना के विकास में जस्टिस पार्टी की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। पेरियार ने सामाजिक समानता, तर्कवाद, आत्मसम्मान और जाति-विरोधी विचारों को अपने आंदोलन का आधार बनाया। आगे चलकर उन्होंने द्रविड़ आंदोलन को संगठित स्वरूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

फुले और आंबेडकर की तुलना

डॉ. आंबेडकर के सामाजिक आंदोलन पर ज्योतिराव फुले के विचारों का प्रभाव माना जाता है। दोनों ने जातिगत असमानता, सामाजिक रूढ़ियों और ब्राह्मणवादी वर्चस्व की आलोचना की तथा शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन माना। दोनों ने वंचित और शोषित समुदायों को संगठित करने तथा सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया।

फुले और आंबेडकर के बीच समानताओं के साथ-साथ रणनीतिक अंतर भी थे। फुले स्त्रियों, शूद्रों और अतिशूद्रों के व्यापक सामाजिक गठबंधन को जाति-व्यवस्था के विरोध का आधार मानते थे, जबकि आंबेडकर दलित समुदाय की स्वतंत्र राजनीतिक पहचान और संगठित शक्ति पर अधिक बल देते थे।

दोनों का लक्ष्य सामाजिक समानता और जातिगत भेदभाव का अंत था, किंतु उनके राजनीतिक अनुभव, सामाजिक परिस्थितियाँ और आंदोलन की रणनीतियाँ अलग-अलग थीं। इसलिए भारतीय जाति-विरोधी आंदोलन में फुले और आंबेडकर की भूमिकाएँ एक-दूसरे की पूरक होने के साथ-साथ विशिष्ट भी दिखाई देती हैं।

स्वतंत्रता के बाद दलित आंदोलन

स्वतंत्रता के बाद दलित आंदोलन ने अनेक नए रूप ग्रहण किए। डॉ. आंबेडकर के विचारों ने बाद की दलित राजनीति और सामाजिक आंदोलनों को व्यापक रूप से प्रभावित किया।

1972 में महाराष्ट्र में दलित पैंथर्स का गठन हुआ। इसके प्रमुख संस्थापकों में नामदेव ढसाल और जे. वी. पवार शामिल थे। यह आंदोलन अमेरिकी ब्लैक पैंथर आंदोलन से प्रेरित था, लेकिन भारतीय सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप इसकी अपनी वैचारिक पहचान विकसित हुई। दलित पैंथर्स ने जातिगत हिंसा, सामाजिक

भेदभाव और आर्थिक शोषण के विरुद्ध राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रतिरोध प्रस्तुत किया। बाद के दौर में कांशीराम ने आंबेडकरवादी राजनीति को नए राजनीतिक संगठन और व्यापक सामाजिक गठबंधन के माध्यम से आगे बढ़ाया। उन्होंने 1984 में बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की। बहुजन राजनीति के माध्यम से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और अन्य वंचित समूहों को राजनीतिक रूप से संगठित करने का प्रयास किया गया।

दलित आंदोलन में आंबेडकर की विरासत

डॉ. आंबेडकर का दलित आंदोलन केवल अस्पृश्यता के विरोध तक सीमित नहीं था। यह सामाजिक समानता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शिक्षा, आर्थिक न्याय, आत्मसम्मान और संवैधानिक अधिकारों के व्यापक संघर्ष से जुड़ा था। उन्होंने दलितों को शिक्षा प्राप्त करने, संगठित होने और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का आह्वान किया। बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना, मूकनायक और बहिष्कृत भारत के माध्यम से पत्रकारिता, महाड़ सत्याग्रह, कालाराम मंदिर आंदोलन, राजनीतिक प्रतिनिधित्व की माँग, पूना समझौता, स्वतंत्र राजनीतिक संगठनों का निर्माण तथा संविधान-निर्माण में उनकी भूमिका उनके संघर्ष के प्रमुख पड़ाव थे।

आंबेडकर ने दलित आंदोलन को केवल सामाजिक सुधार के आंदोलन के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे अधिकार, प्रतिनिधित्व और सत्ता में भागीदारी के व्यापक संघर्ष में परिवर्तित किया। उनके लिए शिक्षा सामाजिक मुक्ति का आधार, संगठन राजनीतिक शक्ति का माध्यम और संघर्ष सामाजिक परिवर्तन का साधन था।

उनकी दृष्टि में वास्तविक लोकतंत्र केवल मतदान या राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना तक सीमित नहीं था। लोकतंत्र की सफलता के लिए सामाजिक और आर्थिक समानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा बंधुत्व आवश्यक थे। उन्होंने चेताया कि यदि राजनीतिक लोकतंत्र के साथ सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बनी रहीं, तो लोकतांत्रिक व्यवस्था के सामने गंभीर चुनौती उत्पन्न हो सकती है।

फुले, गांधी, पेरियार और अन्य सामाजिक सुधारकों के आंदोलनों के साथ आंबेडकर का आंदोलन आधुनिक भारत में जाति-विरोधी सामाजिक चेतना के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी था। स्वतंत्र भारत में संवैधानिक रूप से अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई, किंतु सामाजिक समानता की स्थापना एक निरंतर प्रक्रिया बनी रही।

इस प्रकार डॉ. बी. आर. आंबेडकर का दलित आंदोलन भारतीय सामाजिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकारी प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता को केवल सामाजिक बुराइयों के रूप में नहीं देखा, बल्कि उन्हें सत्ता, संसाधनों, अवसरों और सामाजिक प्रतिष्ठा के असमान वितरण से जुड़ी संरचनात्मक समस्याओं के रूप में समझा। उनकी विचारधारा ने दलित समाज में आत्मसम्मान, राजनीतिक चेतना और अधिकार-बोध को मजबूत किया। डॉ. आंबेडकर की विरासत आज भी सामाजिक न्याय, समान नागरिकता, संवैधानिक अधिकारों, जाति-विरोधी आंदोलनों और लोकतांत्रिक मूल्यों की बहसों में अत्यंत प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची:

1. आंबेडकर, बी. आर. जाति का विनाश। नई दिल्ली।
2. आंबेडकर, बी. आर. कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया? नई दिल्ली।
3. आंबेडकर, बी. आर. राज्य और अल्पसंख्यक: स्वतंत्र भारत के संविधान में उनके अधिकार और उन्हें सुरक्षित करने के उपाय। नई दिल्ली: भारत सरकार।
4. आंबेडकर, बी. आर. बुद्ध और उनका धम्म। नई दिल्ली: सिद्धार्थ बुक्स।
5. ज़ेलियट, एलेनोर। फ्रॉम अनटचेबल टू दलित: एसेज़ ऑन द आंबेडकर मूवमेंट। नई दिल्ली: मनोहर पब्लिकेशन्स, 1992।
6. ओमवेट, गेल। दलित्स एंड द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन: डॉ. आंबेडकर एंड द दलित मूवमेंट इन कॉलोनियल इंडिया। नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स, 1994।
7. जाफ्रेलॉट, क्रिस्टोफ। डॉ. आंबेडकर एंड अनटचेबिलिटी: एनालाइजिंग एंड फाइटिंग कास्ट। न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005।
8. जाफ्रेलॉट, क्रिस्टोफ। इंडियाज़ साइलेंट रिवोल्यूशन: द राइज़ ऑफ द लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इंडिया। न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003।
9. फुले, ज्योतिराव। गुलामगिरी। विभिन्न हिंदी संस्करण।
10. भारत सरकार। द कॉन्स्टिट्यूएंट असेंबली डिबेट्स। नई दिल्ली: लोकसभा सचिवालय।